International Journal of Multidisciplinary Horizon

ISSN: **3049-2017**
IJMH 2026; 3(3): 133-136
© 2026 IJMH
www.themultijournal.com

Received: 26-05-2026
Accepted: 19-06-2026
Publish : 22-06-2026

**डॉ. अनुपम आनन्द**
असिस्टेंट प्रोफेसर (विजिटिंग),
गुरुग्राम विश्वविद्यालय, गुरुग्राम

**Correspondence:**
**डॉ. अनुपम आनन्द**
असिस्टेंट प्रोफेसर (विजिटिंग),
गुरुग्राम विश्वविद्यालय, गुरुग्राम

# काश्मीर शैवदर्शन में बन्धन का स्वरूप: एक दार्शनिक विमर्श

**डॉ. अनुपम आनन्द**

**शोध-सारांश**

प्रस्तुत शोधपत्र काश्मीर शैवदर्शन में बन्धन की अवधारणा का आलोचनात्मक एवं विश्लेषणात्मक अनुशीलन प्रस्तुत करता है। यहाँ बन्धन को अविद्या अथवा मिथ्यात्व का परिणाम न मानकर परमशिव के स्वातन्त्र्यस्वरूप आत्म-संकोच का प्रकटीकरण स्वीकार किया गया है। शोध का प्रमुख प्रतिपाद्य यह है कि यदि बन्धन परमशिव की स्वेच्छया सम्पन्न लीला है, तो बन्धन एवं मोक्ष के मध्य प्रतिपादित द्वैत का तात्त्विक औचित्य किस सीमा तक युक्तिसंगत है। इस सन्दर्भ में मलत्रय की बन्धनकारक सत्ता का समालोचनात्मक परीक्षण किया गया है। यह प्रश्न भी समीक्षित किया गया है कि यदि बन्धन स्वेच्छया स्वीकृत अवस्था है, तो दीक्षा, प्रत्यभिज्ञा, शक्तिपात एवं साधनोपायों की अनिवार्यता का दार्शनिक औचित्य किस प्रकार सिद्ध होता है।

**कूट शब्द-** काश्मीर शैवदर्शन, बन्धन, आत्मसङ्कोच, मलत्रय, स्वातन्त्र्य

भारतीय दार्शनिक परम्परा में 'बन्धन' और 'मोक्ष' का विमर्श अत्यन्त केन्द्रीय विषय रहा है। जहाँ सांख्य प्रकृति और पुरुष के अविवेक को बन्धन मानता है, वहीं न्याय-वैशेषिक इसे मिथ्याज्ञान और दुखों का प्रवाह स्वीकार करते हैं। अद्वैत वेदान्त में बन्धन को 'माया' या अविद्याजनित एक अनिर्वचनीय व मिथ्या अवभासन माना गया है, जिससे मुक्त होने के लिए जगत के निषेध की आवश्यकता होती है। किन्तु, इन सभी से भिन्न और एक अनूठा दृष्टिकोण रखते हुए काश्मीर शैवमत बन्धन को मिथ्या या बाह्य तत्व नहीं मानता। इसके अनुसार, यह संपूर्ण जगत 'परमशिव' की ही चेतना का वास्तविक विलास है और प्रत्येक जीव मूलतः पूर्ण स्वतन्त्र व शिव-स्वरूप है।

इस दर्शन के अनुसार, परमशिव अपनी ही आनन्दमयी 'स्वातन्त्र्य-शक्ति' के कारण स्वेच्छा से स्वयं को एक सीमित अणु (जीव) के रूप में संकुचित कर लेते हैं। अपने इस वास्तविक, अनन्त स्वरूप को भूल जाना और स्वयं को संसारी मान लेना ही काश्मीर शैवशास्त्रों में 'बन्धन' कहलाता है। यह दार्शनिक विमर्श 'त्रिविध मलों' के माध्यम से जीव के आत्म-संकोच को रेखांकित करता है। इसका मूल उद्देश्य जगत का निषेध नहीं, अपितु इसी बन्धन के अन्दर शिवत्व की प्रत्यभिज्ञा एवं पुनः परम स्वातन्त्र्य को प्राप्ति है।

**बन्धन**

शैवशास्त्रों में जीव के बन्धन का कारण 'अज्ञान' है-

**बन्धनिमित्तस्याज्ञानस्य विरोधकत्वात् (ज्ञानं मोक्षकारणम्)** ।[1]

इन शास्त्रों ने अज्ञान के लिए एक पारिभाषिक शब्द का प्रयोग किया गया है और वह 'मल' है ।[2] मल शब्द का प्रयोग अज्ञान के अर्थ में शाङ्कर-वेदान्त में कहीं भी नहीं है। शिवसूत्र में मल-दूषित ज्ञान को बन्धन वर्णित किया गया है।[3] परमशिव द्वारा अपनी स्वातन्त्र्य-शक्ति से अपने अन्दर ही अवरोहण और आरोहण क्रमों का व्यापार निष्पन्न किया जाता है। अज्ञान ही व्यक्ति में संदेह हेतु दायित्ववान है तथा उसी से सृष्टि एवं संहार का क्रम सञ्चालित होता है।[4] मालिनीविजयोत्तरतन्त्र में कहा गया है कि संसारांकुरण का कारण मल है-

**मलमज्ञानमिच्छन्ति संसाराङ्कुरकारणम्।।**[5]

योगिनीभू अभिनवगुप्तपदाचार्य ने तन्त्रसार में ऐसा ही भाव व्यक्त किया है।प्रत्यभिज्ञादर्शन में अज्ञान का अर्थ ज्ञानाभाव नहीं, अपितु परिमित ज्ञान से है, जो सांसारिक जीवों में होता है।[6] परमशिव जब अपने स्वातन्त्र्य-स्वभाव के लीलावशात् जीवभाव का आलम्बन लेकर स्वरूपगोपन क्रिया का निष्पादन करता है तब वह अपने स्वपरिगृहीत पारिमित्य को ज्ञान के संकुचन के कारण अपना यथार्थ पारिमित्य मान लेता है। यही संकुचित ज्ञान सीमित परिमिति उसका बन्धन बन जाती है। वही संवित्स्वरूप अज्ञान के कारण संकुचित ज्ञातृ-कर्तृरूप 'अणु' बन जाता है।

भेद इस अज्ञान का ही प्रतिफल है। इससे ही द्वैतभाव की प्राप्ति होती है।[7] अभिनवगुप्त ने परमेश्वर की इसी शक्ति को स्वस्वरूपगोपनात्मिका भी कहा गया है-

**अपूर्णमन्यता चेयं तथारूपावभासनम् ।**
**स्वतन्त्रस्य शिवस्येच्छा घटरूपो यथा घटः ॥**[8]

इसे तिरोधानशक्ति का रूपान्तरित स्वररूप भी कहा गया है।[9] 'मल' परमेश्वर की स्वात्मप्रच्छादनेच्छा के अतिरिक्त अन्य कोई वस्तु नहीं है। प्रच्छादक होने के कारण यह वस्तु भी है। क्योंकि पृथ्वी आदि को वस्तु मानने का आधार भी परमेश्वर की इच्छा ही है-

**कल्पितस् तु कार्यकारणभावः परमेशेच्छया नियतिप्राणया निर्मितः स..।**[10]

प्रत्यभिज्ञा दर्शन अज्ञान को दो प्रकार का मानता है-

**द्विधा पौरुषबौद्धत्वभिदोक्तं शिवशासने ॥**[11]

बुद्धिगत (बौद्ध) और पौरुष।[12] बुद्धि अन्तःकरण की वृत्ति है। अन्तःकरण केउपरान्त ही शरीर निर्मित होता है। शरीर भुवनाकार स्वरूप होता है। इस भुवन के अङ्कुर का कारण भी अज्ञान ही कहा गया है-

**मलमज्ञानमिच्छन्ति संसाराङ्कुरकारणम् ।**[13]

इस कोटि का अज्ञान ही बौद्ध अज्ञान होता है। पौरुष अज्ञान विकल्पात्मक स्वभाववाला एवं सङ्कुचित तथा प्रथात्मक होता है। यह संसार का मूल कारण है। यह पौरुष अज्ञान यदा-कदा पूर्व-अनुभवजन्य स्वप्न के सदृश बौद्ध अज्ञान का कारण भी बनता है। बौद्ध-अज्ञान का स्वभाव अनिश्चयात्मक होता है। 'स्व' भाव की तात्त्विकता का ज्ञान होने तक यह अनिश्चय बना रहता है। अनात्मतत्त्व में आत्मवत् प्रतीति ही विपरीत निश्चय है।[14] 'मैं इसको जानता हूँ' ऐसे अध्यवसाय से युक्त बुद्धि मनुष्य में जागृत रहती है। बुद्धि का यह अध्यवसाय माया, कला, विद्या, राग, काल तथा नियति नामक के षड्कञ्चुकों का कारण होता है। इसके कारण अणु में चित् की छाया का संक्रमण विद्यमान रहता है। चिच्छाया के बिम्ब स्वरूप बुद्धिजन्य ज्ञान को ही अज्ञान कहते हैं। यह बौद्ध अज्ञान है।[15] प्रत्यभिज्ञादर्शन में मलों की संख्या तीन है-

**आणवमायीयकार्ममलावृतत्वात् 'त्रिमलः' ।**[16]

**आणवमल**

अणु का अर्थ है-छोटा या संकुचित। [17] जब परमेश्वर अपनी पूर्णता एवं शुद्ध संवित्स्वरूपता को विस्मृत कर संकुचित होता हुआ, वस्तुस्वरूप को ही अपना समझ बैठता है, तब वह आणवमल से युक्त होता है। ज्ञान एवं क्रिया के संकोच से यह भी दो प्रकार का कहा जाता है-

**स्वातन्त्र्यहानिर्बोधस्य स्वातन्त्र्याप्यबोधता ।**
**द्विधाऽऽणवं मलमिदं स्वस्वरूपापहानितः ।।**[18]

अभिनवगुप्तपादाचार्य के अनुसार चिन्मय परमशिव तथा अचिद् रूप माया दोनों का जब एक स्थान पर सामञ्जस्य होता है, वही अणु होता है, इसी अचिद्रूपता को मल कहते हैं।[19] इसलिए मालिनीविजयोत्तरतन्त्र में वर्णित है कि चिन्मय बीज होता है तथा अचिन्मय माया योनि है। बीज तथा योनि का सामञ्जस्य अनन्त रूपों में व्यक्त होता है।[20] अज्ञान ही माया है तथा माया-शक्ति द्वारा ही परमेश्वर स्वयं में अणुता का कारण है-

**अत एवाध्वनि प्रोक्ता पूर्वं माया द्विधा स्थिता ।**
**यथा च माया देवस्य शक्तिरभ्येति भेदिनम् ॥**[21]

आणवमल अभिलाषात्मक है।[22] यह अभिलाषा क्रियारहित है तथा वही अवच्छेद के विना संकुचित ज्ञान ही मल है।[23] ईश्वरेच्छा से परमेश्वर अनन्तनाथ के भीतर भोगेच्छा उत्पन्न करते हैं। इसी भोगेच्छु के भोगसाधन की सिद्धि हेतु मन्त्रेश्वर शक्तियों के द्वारा माया में प्रवेश कर जगत् को उत्पन्न करते हैं। संसार में वर्तमान देवता आदि सभी में ये त्रिविध मल होते हैं। इनमें भी एक 'कार्ममल' ही मुख्यरूपेण संसार का कारण है। बोध के स्वातन्त्र्य की हानि एवं स्वातन्त्र्य बोध का न होना-ये दो प्रकार के 'आणवमल' स्वयं के स्वरूप की हानि के कारण होते हैं। अभिलाषा कार्ममल का निमित्त है। ये दो प्रकार के आणवमल सर्वत्र कहे जाते हैं।[24] इस मल के द्वारा आवृत्त अणुओं का जो तत्त्व है, शिव ही उसको देखता है तथा वह मल उसी (शिव) का होता है-

**शिव एव च तत्पश्येत्तस्यैवासौ मलो भवेत् ।**[25]

**कार्ममल एवं मायीय मल**

संसार का कारण यह 'कर्म' ही संसार का अङ्कुर कहा जाता है[26] तथा शरीर भुवन का आकार माया से निष्पन्न कहा गया है।[27] मायीय तथा कार्ममल का भी कारण 'आणवमल' को कहा गया है। स्वच्छन्दतन्त्रोद्योत में वर्णित है कि शुभ-अशुभ की वासना को कार्ममल कहा जाता है। यह अनेकों प्रकार के जन्म, आयु एवं भोग को देने वाला है। तीसरा मल मायीयमल है, इसे कार्ममल का कारण कहा जाता है। यह मल ही जीव के संसरण का कारण है।[28]

जो मनुष्य इन त्रिविधमलों से निर्लिप्त रहता है, वह केवल परिमित रूप से शिवाभेद का स्पर्श न करते हुए शुद्धचिन्मात्रा रूप में स्थित 'विज्ञानकेवली' कहा जाता है।[29] माया के ऊपर एवं सद्विद्या के नीचे विज्ञानकेवली रहते हैं। वह पुनः परमेश्वर की इच्छा से शिवाभेद का परामर्श करता हुआ, क्रमशः मन्त्र आदि रूप होकर शिवात्मता को प्राप्त करता है।[30]

यह कहना कि मल अर्थात् अज्ञान को संसार के अंकुरण का कारण माना गया है, मिथ्या नहीं है। विचित्र फल देने के कारण कर्म की जो कर्मता प्रसिद्ध है, वह आत्मा में संकोच के बिना नहीं हो सकती तथा यही संकोच काश्मीर शैवशास्त्र में 'मल' कहलाता है। इस प्रकार कहा जा सकता है कि यह आत्मा आणव, कार्म एवं मायीय मलों से युक्त है। इन्हीं को इसके बन्धन का कारण कहा गया है-

**योनिवर्गः कलाशरीरम्।**[31]

परमेश्वर परमशिव अपनी चिद्विभु शक्ति के संकोच के कारण मलों से आवृत्त होकर संसारी बन जाता है।[32] इसी को और अधिक स्पष्ट करते हुए आचार्य क्षेमराज कहते हैं कि जब चिदात्मा परमेश्वर, अपने स्वातन्त्र्य से अभेदव्याप्ति को संकुचित करके भेदव्याप्ति का अवलम्बन ग्रहण करते हैं, तब उनकी इच्छा आदि शक्तियाँ असंकुचित होने पर भी संकुचित प्रतीत होती हैं, तभी यह मलों से आवृत्त होकर अपूर्णमन्यतात्मक आणवमल के नाम से कही जाती है। जब ज्ञानशक्ति क्रमशः संकुचित होकर, भेदज्ञान में, सर्वज्ञता से अल्पज्ञत्व को प्राप्त करती है और अन्तःकरण तथा ज्ञानेन्द्रियता की

प्राप्तिपूर्वक अत्यन्त संकोच को ग्रहण करती है, तब उसको देह आदि भिन्न-भिन्न वेद्यों का विकासरूप 'मायीय मल' कहते हैं-

**तथा चाप्रतिहतस्वातन्त्र्यरूपा इच्छाशक्तिः संकुचिता सती अपूर्णम्मन्यता-रूपम् आणवं मलम्; ज्ञानशक्तिः क्रमेण सङ्कोचाद् भेदे सर्वज्ञत्वस्य किञ्चिज्ज्ञत्वाप्तेः अन्तःकरणबुद्धीन्द्रियतापत्तिपूर्वंअत्यन्तं सङ्कोचग्रहणेन भिन्नवेद्यप्रथारूपं मायीयमलम्।** [33]

और जब क्रियाशक्ति की सर्वकर्तृता शक्ति, अल्प कर्तृत्व को प्राप्त होती है और कर्मेन्द्रियरूप सङ्कोच को ग्रहण करके अत्यन्त परिमित हो जाती है, तब उसे ही शुभ तथा अशुभ कर्ममय 'कार्ममल' कहा जाता है।[34] परमात्मा अपनी समस्त शक्तियों के दारिद्र से संसारी कहा जाता है। उपरोक्त तीनों मलों का आधान परमेश्वर की मायाशक्ति ही करती है। किंतु अनादिमायामूलक मल भी अनादि है और इन अनादि पाशत्रय में बद्धपशु (जीव) भी अनादि ही है। माया के पञ्चकञ्चुकों कला, विद्या, राग, काल और नियति के पाश से बद्ध शिव नित्यपूर्णता के विस्मरण से पशु बन प्रतीत होता है। इसकारण स्वयं में अपूर्णता का अभिज्ञान करता है। उसका यह अपूर्णत्वाभिज्ञान ही 'आणवमल' है-

**तथा च अप्रतिस्वातन्त्र्यरूपा इच्छाशक्तिः सङ्कुचिता सती अपूर्णम्म-न्यतारूपम् आणवमलम्।**[35]

आणवमल के द्वारा स्वरूप के संकुचित हो जाने पर स्व से भिन्न शरीर, इन्द्रिय, भुवनादि का प्रथन होता है, उसको 'मायीयमल' अथवा 'संसारशब्द' से जाना जाता है। मायान्ध जीव वेद्य पदार्थों को स्व से भिन्न देखता है। अतः पाशबद्ध होकर पञ्चविध (सृष्टि-स्थिति, आदि) क्लेशों से सम्पृक्त हो जाता है-

**वृत्ते स्वरूपसङ्कोचे आणवेन मलेन वै।**
**भिन्नस्य प्रथनं यत् तन्मायीयमिति संज्ञितम्।।** [36]

इसी प्रकार अष्टविध देवयोनि, मानुषयोनि तथा पञ्चविध तिर्यग्योनि के योग से चौदह प्रकार की सृष्टि की परिकल्पना है, जो एक दूसरे से अत्यन्त विलक्षण है। कार्ममल ही यहाँ कारण है। यही परम्परा भिन्न रूपों में भासित होने वाले अबोधरूप देह, प्राण, बुद्धि प्रभृति कर्ता में धर्माधर्म की वासना उत्पन्न करता है।[37] इन मलों में से मुख्यतया कार्ममल ही सांसारिक बन्धन में कारण है, क्योंकि इसके अतिरिक्त शेष द्विविध मलों से देहादि की निष्पत्ति सम्भव नहीं है-

**असंसरणसोपानपदबन्धो दृढीकृतः।**[38]

इन्हीं मलों के प्रभाव से प्रमाता के सात भेद बताये गये हैं-शिव, मन्त्रमहेश्वर, मन्त्रेश्वर, मन्त्र, विज्ञानाकल, प्रलयाकल तथा सकल। प्रथम तीन प्रमाताओं में मायामल ही रहता है। मल के न्यूनता या अधिकता से इनमें परस्परभेद उत्पन्न होता है। मन्त्र, विज्ञानाकल तथा प्रलयाकल इन प्रमाताओं में मायिक एवं आणव द्विविध मल रहते हैं, मन्त्र प्रमाता में मायामलप्रयुक्त भेद, विज्ञानाकल में आणवमलप्रयुक्त भेद तथा प्रलयाकल में उभय-मलप्रयुक्त भेद होता है। प्रलयाकल में कार्ममल की सत्ता तो होती है, परन्तु उसमें कार्योत्पादन का सामर्थ्य न होने से उसकी गणना नहीं होती। सकलप्रमाता में तीनों ही मल रहते हैं।[39]

## उपसंहार

वस्तुतः काश्मीर शैवदर्शन में बन्धन की कोई पृथक् सत्ता नहीं है, अपितु यह परमशिव की स्वातन्त्र्यशक्ति से सम्पन्न आत्म-सङ्कोच का ही परिणाम है। इस प्रकार बन्धन और मोक्ष परस्पर विरोधी तत्त्व न होकर एक ही परमचैतन्य की भिन्न-भिन्न अवस्थाओं के दार्शनिक निरूपण हैं। तथापि यह अवधारणा जीव की व्यावहारिक अनुभूति, मलत्रय की भूमिका तथा मोक्षोपायों की अनिवार्यता के सम्बन्ध में महत्त्वपूर्ण दार्शनिक प्रश्न भी उत्पन्न करती है। काश्मीर शैवदर्शन इन प्रश्नों का समाधान दीक्षा, प्रत्यभिज्ञा, शक्तिपात, तथा शिवस्वरूप की पुनः अनुभूति के माध्यम से प्रस्तुत करता है, जहाँ मोक्ष किसी नवीन उपलब्धि का नाम न होकर अपने नित्य शिवस्वरूप की पुनर्प्रत्यभिज्ञा है। अतः कहा जा सकता है कि काश्मीर शैवदर्शन की बन्धन-मीमांसा भारतीय दार्शनिक परम्परा में अद्वैत की एक विशिष्ट, मौलिक एवं दार्शनिक रूप से समृद्ध व्याख्या प्रस्तुत करती है, जो आगे और गहन समालोचनात्मक अध्ययन की अपेक्षा रखती है।

## सन्दर्भ- ग्रन्थ


- ईश्वरप्रत्यभिज्ञा विमर्शिनी: अभिनवगुप्त,काश्मीर ग्रन्थावली,श्रीन-गर,1918-21
- ईश्वरप्रत्यभिज्ञा: उत्पलदेव, वृत्ति सहित, काश्मीर ग्रन्थावली, श्रीनगर,1921
- तन्त्रसार: अभिनवगुप्त, काश्मीर ग्रन्थावली, श्रीनगर, 1918.
- तन्त्रालोक: अभिनवगुप्त,जयरथकृत टीका सहित, काश्मीर ग्रन्थावली, श्रीनगर, 1918-38.
- प्रत्यभिज्ञाहृदयम्: क्षेमराज,जयदेवसिंह द्वारा सम्पादित और व्याख्यायित,मोतीलाल बनारसीदास, वाराणसी, 1973.
- भास्करी: भास्करकण्ठ, भाग 1-2, सरस्वती भवन टेक्स्ट्स, सं0 70,86, लखनऊ, 1954.
- भास्करी: भास्करकण्ठ, भाग3, ईश्वरदृप्रत्यभिज्ञादृ विमर्शिनी, के0 सी0 पाण्डेय कृत अंग्रेजी अनुवाद सहित, सरस्वती भवन टेक्स्ट्स, सं0 84, लखनऊ, 1954.
- मालिनीविजयोत्तरतन्त्र: आगम शास्त्र, काश्मीर ग्रन्थावली, श्रीनगर, 1922.
- शिवसूत्र: आगमशास्त्र वृत्ति सहित,काश्मीर ग्रन्थावली, श्रीनगर, 1916.
- शिवसूत्रविमर्शिनी: क्षेमराज, जे0सी0 चटर्जी द्वारा सम्पादित, काश्मीर ग्रन्थावली, श्रीनगर, 1911.


## सन्दर्भ- सूची

1. तन्त्रसार, 1.3
2. अज्ञानं किल बन्धहेतुरुदितः शास्त्रे मलं तत्स्मृतम्.....। तन्त्रसार, 1.4
3. शिवसूत्र, 1/2, 2/2, 2/9, 3/29, 1/8, 1/4
   अज्ञानाच्छङ्कते लोकस्ततः सृष्टिश्च संहतिः।। प्रत्यभिज्ञाहृदयम्
4. मालिनीविजयोत्तरतन्त्र, 1/23
5. अज्ञानमिति न ज्ञानाभावश्चातिप्रसङ्गतः ।
6. स हि लोष्टादिकेऽप्यस्ति न च तस्यास्ति संसृतिः ॥ तन्त्रालोक 1/25
7. Ajñāna is nothing but the sense of duality and egoity. It is not the world which is the outcome of ajñāna, it is only the sense of duality and egoity that is the outcome of ajñāna.-Kamlakar Misra, "Significance of the Tantric Tradition"
8. तन्त्रालोक, 9/65
9. तत्राणोः सत एवास्ति स्वातन्त्र्यं कर्मतोहि तत् ।
   श्वरस्य च या स्वात्मतिरोधित्सा निमित्तताम् ॥
   भ्येति कर्ममलयोरतोऽनादिव्यवस्थितिः ।
   रोधिः पूर्णरूपस्यापूर्णत्वं तच्च पूरणम् ॥ तन्त्रालोक 13/110, 111
10. तन्त्रसार, 8.6

स्वात्मप्रच्छादनेच्छैव वस्तुभूतस्तथा मलः ।
यथैवाव्यतिरिक्तस्य धरादेर्भावितात्मता ॥ तन्त्रालोक ,9/66,

11. तन्त्रालोक 1/36
12. ...द्विविधं च अज्ञानम्, बुद्धिगतं पौरुषं च...। तन्त्रसार,1.3
13. तन्त्रालोक, 1/23
14. ... अनिश्चयस्वभावं विपरीतनिश्चयात्मकं च। तन्त्रसार
15. अहमित्थमिदंवेद्मीत्येवमध्यवसायिनी
।षट्कञ्चुकाबिलाणूत्थप्रतिबिम्बनतो यदा ॥
धीर्जायते तदा तादृग्ज्ञानमज्ञानशब्दितम् । बौद्धं तस्य च तत्पौंस्नं पोषणीयं च पोष्टृच।। तन्त्रालोक ,1/39-40
16. प्रत्यभिज्ञाहृदयम् ,60
17. (क) अणु-अण्+उन्, छोटे परिमाण वाला, संकुचित आदि।
(ख) डॉ० ईश्वरचन्द्र शर्मा, परिजात कोश
(ग) Dr. Vaman Shivram Apte. The Sanskrit English Dictionary.
18. ईश्वरप्रत्यभिज्ञा, 2-2-4
19. तन्त्रालोक, 9/62-118
20. मालिनीविजयोत्तरतन्त्र 3/12-25
21. तन्त्रालोक,9/154
22. ईश्वरेच्छावशक्षुब्धभोगलोलिकचिद्गणान्। तन्त्रालोक, 9/61
23. अणूनां लोलिका नाम निष्कर्मा याभिलाषिता ।
अपूर्णमन्यताज्ञानं मलं सावच्छिदोज्झिता ॥ तन्त्रालोक, 9/62
24. इत्याद्युक्त्या द्विप्रकारमाणवाख्यं सर्वत्रैवोच्यते। तन्त्रालोकविवेक, 9
25. तन्त्रालोक, 9/74
26. संसारकारणं कर्म संसाराङ्कुर उच्यते। तन्त्रालोक,9/88
27. शरीरभुवनाकारं मायीयं परिकीर्तितम्। तन्त्रालोकविवेक
28. कर्मकस्तु शरीराणि विषयः करणानि च। - ईश्वरप्रत्यभिज्ञाकारिका, 3-2-10 (भा०-2)
29. तन्त्रालोक, 9/90-92
30. स पुनः शांभवेच्छातः शिवाभेदं परामृशन् ॥
क्रमान्मन्त्रेशतन्नेतृरूपो याति शिवात्मताम् । तन्त्रालोक, 9/92-93
31. शिवसूत्र, 1.3
32. चिद्वत्तच्छक्तिसङ्कोचात् मलावृतः संसारी। शिवसूत्रविमर्शिनी
33. प्रत्यभिज्ञाहृदयम्
34. क्रियाशक्तिः क्रमेण भेदे सर्वकर्तृत्वस्य किञ्चित्कर्तृत्वाप्तेः कर्मेन्द्रिय-रूपसङ्कोचग्रहणपूर्वमत्यन्तंपरिमिततां प्राप्ता शुभाशुभानुष्ठानमयं कार्ममलम्। - प्रत्यभिज्ञाहृदयम्
35. स्वच्छन्दतन्त्र टीका (भाग ५)
36. पूर्णताप्रत्यभिज्ञा, 2/473
37. पूर्णताप्रत्यभिज्ञा, 2/475, 2/477, 2/478
38. पूर्णताप्रत्यभिज्ञा, 2/484
39. मलद्वयकृता भान्ति प्रमातारस्त्रयस्त्वमी।
मन्त्रविज्ञानकलनप्रलयाकलनामकाः ।। पूर्णताप्रत्यभिज्ञा, 2/487
मलैस्त्रिभिः समायुक्तः सकलः सप्तमो मतः।
भेदस्तत्र मलैरस्ति स्वीकृतोऽङ्गाङ्गितादिभिः।।पूर्णताप्रत्यभिज्ञ, 2/490